जैन-दर्शन में मानववादी चिन्तन

[] **श्री रतनलाल कामड़**

[ग्राम पोस्ट—चंगेड़ी, तहसील—मावली, जिला—उदयपुर (राज.)]

मानववादी-दार्शनिक परम्परा में जैन-दर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस दर्शन में मानव-कल्याणपरक इहलौकिक-मूल्यों का विशद एवं वैज्ञानिक परिशीलन प्रस्तुत किया गया है, जैसे : मानव व उसकी कर्त्तव्य-परायणता, मानव-मात्र की समानता व उसका विशाल गौरव, चारित्रिक-शुद्धि, स्त्री व शूद्रों का समाज में उचित स्थान, सर्व-मंगल की भावना, हिंसक-प्रवृत्ति का प्रबल विरोध, प्राकृत : जन-भाषा का प्रयोग, समाजवादी प्रेरणा, सुदृढ़ व स्वच्छ आर्थिक व्यवस्था, विश्व-बन्धुत्व की भावना, आध्यात्मिक व लौकिक मूल्य, भौतिकवादी (जड़वाद) मूल्य, नैतिक दर्शन, रत्नत्रय, पंचमहाव्रत व ईश्वर का मानवीयकरण आदि मानववादी चिन्तनाओं पर विचार-दर्शन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ कुछ तथ्यों का संक्षिप्त अध्ययन इस प्रकार है—

१. मानव और उसका गौरव

जैन दर्शन में मानव-जन्म की महत्ता को अंगीकार किया गया है। यह मानव-जीवन मंगल का प्रतीक है क्योंकि वह अनेक मंगल-कर्मों को सिद्ध करने वाला सर्वशक्तिमान् सत्य है। भगवान् महावीर ने मानव की गरिमा को सहर्ष स्वीकार किया है : "जब अशुभ-कर्मों का विनाश होता है तभी आत्मा शुद्ध, निर्मल और पवित्र होती है, और तभी उसे मानव-जन्म की प्राप्ति होती है।"[१] यह मानव-जीवन भरसक प्रयत्न के पश्चात् ही प्राप्त होता है, यहाँ भगवान् महावीर के पावन-उद्‌गारों को उद्‌धृत करना उचित है : "सांसारिक जीवों को मनुष्य का जन्म चिरकाल तक इधर-उधर भटकने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है, वह सहज नहीं है। दुष्कर्म का फल बड़ा भयंकर होता है। अतएव हे ! गौतम ! क्षण भर के लिए भी प्रमाद मत कर"।[२] यहाँ भगवान महावीर ने मानवमात्र को सर्वश्रेष्ठ कर्म करने के लिए उपदेश दिये हैं, जिससे मानव अपने परमध्येय को प्राप्त कर सके।

२. मानव और उसका कल्याण

जैन दर्शन में मानव-मूल्यों को महत्ता प्राप्त हुई है, जो आत्मा की निर्मलता, सत्यवादिता, अहिंसा व प्रेम आदि तथ्यों पर अवलम्बित है। मानव ही एक ऐसी विरासत है, जो अमूल्य नैतिक-मूल्यों का सृजक है, उपभोक्ता है। वह शुभ-अशुभ-मूल्यों का उत्तरदायी है। इस दर्शन में जीवन का परम ध्येय—कामनाओं का परित्याग एवं आत्मशुद्धि

---

१. कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं ॥
—उत्तराध्ययन सूत्र ३. ७.

२. दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥—उत्तराध्ययन सूत्र १०. ४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वीकार किया गया है। यह समाजवादी चिन्तना का सर्जक है, जो वर्ण-भेद, रंग-भेद व लिंग-भेद आदि अमानवीय दुष्प्रवृत्तियों का निराकरण करने की योजना प्रस्तुत करता है। जैन-दार्शनिकों ने चारित्रिक-श्रेष्ठता, शुद्धता, अहिंसा,[१] प्रेम, करुणा, विश्व-मंगल, सहभाव एवं समानता आदि मानवीय गुणों को अंगीकार कर, उसे मानवोपयोगी सिद्ध किया है। यह न केवल मानव की मंगल-कामना का इच्छुक है, अपितु प्राणीमात्र के लिए मंगल-भावना प्रस्तुत करता है।

जैन-दर्शन मानव को पाँच नियमों का सदुपदेश देता है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह।[२] ये पाँच तत्त्व मानव को कल्याण-पथ पर चलने को प्रेरित करते हैं। वह रत्न-त्रय[३] को मोक्ष व मानव-व्यक्तित्व में पूर्ण सहायक स्वीकार करता है। यह एक अहिंसावादी चिन्तना का सर्जक है जो विश्वकल्याण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अहिंसा मानव का सुन्दर आभूषण है, उसे देवता भी प्रणाम करते हैं—"हे गौतम ! जीव की दया, संयम, मन, वचन व काया से शुद्ध ही मंगलमय की संज्ञा है।" मानव का कल्याण सम-दृष्टि से ही सम्भव है। "हमें सबको, समस्त प्राणियों को, चाहे वे मित्र हों या शत्रु और किसी भी जाति के क्यों न हों, समान दृष्टिकोण से देखना चाहिये।"[४] इस समतावादी सिद्धान्त में मैत्रीभावना को पर्याप्त बल मिला है, अन्यथा मानव का मानव के प्रति कोई सम्बन्ध न होता।

जैन-दर्शन में मानव का परम लक्ष्य परमार्थ को अंगीकार किया गया है। वह आत्मकल्याण, सामाजिक-कल्याण व उनके हितों पर भी आवश्यक बल प्रदान करता है। मानव की परोपकार-भावना से ही आत्म-विकास व सद्-भावना का प्रसार होता है।

जैन-दर्शन समाजवादी विचारधारा का पोषक है। व्यक्ति अपने गुण, कर्म व स्वभाव से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र कहा जा सकता है, न कि मात्र जन्म से।[५] इस दर्शन में मानव-जाति की एकता, प्राणीमात्र की समता, समाज-कल्याण, नीति-संवर्द्धन तथा आचार-विचार की श्रेष्ठता पर बल दिया है। समाज में वर्ग-संघर्ष आदि अमानवीय-प्रवृत्तियों से बचने का आदेश दिया है, जो मानवमात्र के लिए हितकारी हैं।[६]

३. मानव और आध्यात्मिक मूल्य

जैन-दर्शन की यह मान्यता है कि मानव का व्यक्तित्व संस्कारों के आवरण से प्रभावित रहता है। इन संस्कारों के प्रभाव कम होने पर ही आत्मा में ज्ञान, सुख व शक्ति की अभिवृद्धि होती है।[७] यह दर्शन आत्म-ज्ञान पर पर्याप्त बल देता है जो नैतिक व आचार-मूल्यों से ही प्राप्त होता है।[८] उसकी उद्घोषणा है कि आध्यात्मिक साधना व उसके अनुशासन से ही मानव का कल्याण संभव हो सकता है। अतः मानव की आध्यात्मिक धरोहर को न केवल जैन-दर्शन ही स्वीकार करता, अपितु सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं।

---

१. (i) अहिंसा परमो धर्मः।
(ii) जैनदर्शन में अहिंसा का महत्त्वपूर्ण स्थान है, भारतीय चिन्तन-परम्परा में यही एक ऐसा सम्प्रदाय है, जो अहिंसा-दर्शन की वैज्ञानिक व मानवोपयोगी चिन्तना प्रस्तुत करता है। उसकी उद्घोषणा है कि "अहिंसा शक्तिशाली की ताकत है, दुर्बल की नहीं।"

२. हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्योविरतिर्व्रतम्। —तत्त्वार्थसूत्र ७।१

३. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-मार्गः। —तत्त्वार्थसूत्र ७।१

४. उत्तराध्ययन अ० १६, गा० २६.

५. वही, अ० २५, गा० ३३.

६. Jainism and Democracy : Dr. Indra Chandra Shastri, p. 40.

७. भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ० १५०

८. The Concept of Man : Radhakrishnan and P. T. Raju, p. 252.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. मानव और उसकी जीवात्मा

जैन-दर्शन में जीव या आत्मा की सत्ता स्वीकार की गई है। उसके अनुसार आत्मा के दो भेद हैं—मुक्त-जीव और बद्धजीव। जिन्होंने कैवल्य को हासिल कर लिया, वे मुक्त-जीव हैं। जो अभी तक सांसारिक आसक्ति में आबद्ध हैं, वे बद्धजीव हैं। बद्धजीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर जीव। त्रस-जीवों में क्रियाशीलता होती हैं, जबकि स्थावर-जीवों में केवल स्पर्श-ज्ञान की सत्ता होती है। स्थावर-जीव में शरीर का पूर्ण विकास नहीं होता है, जबकि त्रस-जीवों में न्यूनाधिक विकास की अवस्था पायी जाती है। उनमें भी क्रमशः दो, तीन, चार व पाँच इन्द्रिय जीव होते हैं, जैसे घोंघा, पिपीलिका, भ्रमर, मनुष्य, पशु व पक्षी आदि।

जैन-दर्शन में चैतन्य-द्रव्य को जीव या आत्मा की संज्ञा दी गयी है।[1] संसार के प्रत्येक जीव में चैतन्य की सत्ता उपलब्ध होती है। प्रत्येक जीव स्वभावतः अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सामर्थ्य आदि अलौकिक गुणों से सम्पन्न होता है। सभी जीवों में चैतन्य विद्यमान रहता है, किन्तु प्रत्येक जीव में उसकी मात्रा व विकास भिन्न-भिन्न होता है। सिद्ध आत्माओं में सबसे अधिक चैतन्य की सत्ता रहती है। सिद्ध जीव सर्वश्रेष्ठ व पूर्णज्ञानी होते हैं। सबसे निम्न एकेन्द्रिय जीव होते हैं, वे क्षिति, जल, अग्नि, व वायु में रहते हैं। इन जीवों में चैतन्य सीमित या अस्पष्ट होता है। त्रस जीवों में दो से पाँच तक इन्द्रियाँ होती हैं, जैसे कृमि, पिपीलिका, भ्रमर व मनुष्य आदि।

जीव शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता एवं फल का भोक्ता है। सुख-दुःख का भोक्ता होता है। वह स्वयं को प्रकाशित करता व परिणामी है। शरीर से पूर्णतया पृथक् है, चैतन्य ही उसका बड़ा सबसे प्रमाण है। वह दीपक के प्रकाश की भांति संकोच व विकासशील प्रवृत्ति वाला है। हस्ती के शरीर में स्थित जीव विशालकाय एवं चींटी में रहने वाला अल्पकाय होता है।[2]

५. मानव और कैवल्य

जीव व पुद्गल का संयोग बन्धन और वियोग मोक्ष की संज्ञा है।[3] जीव का स्वरूप नित्य शुद्ध है। वह ऊर्ध्वगमन करता है, यह उसका स्वभाव है। किन्तु कर्मों के आवरण के कारण वह ऊपर गति न करके, इस संसार में ही रह जाता है। परन्तु ज्यों-ज्यों अज्ञान के आवरण (क्रोध, मान व अभिमान) को त्रिरत्न द्वारा नष्ट कर देता है, तभी जीव का ऊर्ध्वगमन होता है। वह जीव उठकर सिद्ध-शिला को प्राप्त कर लेता है। यही जीव की कैवल्य अवस्था है। अतः जीव का पुद्गल से अलग होना ही मोक्ष है। इन पुद्गलों का वियोग त्रि-रत्न व पंचमहाव्रत की सहायता से ही संभव है।

६. मानव और जड़वाद

जैन-दर्शन में जड़वाद का महत्वपूर्ण स्थान है जिसे अजीववाद[4] भी कहते हैं। इसके निम्न पाँच वर्ग हैं—पुद्गल, आकाश, काल, धर्म व अधर्म।

---

१. चैतन्यलक्षणो जीवः।—षड्-दर्शन समुच्चय, कारिका ४९

२. भारतीय चिन्तन का इतिहास, डा० श्रीकृष्ण ओझा, जयपुर, १९७७, पृ० ५५

३. मिथ्यादर्शनादीनां बन्धहेतुनां निरोधेऽभिनवकर्माभावानिर्जराहेतुसन्निधानेनार्जितस्य कर्माणो निरसनादात्यन्तिक्कर्म-मोक्षणं मोक्षः।

—सर्वदर्शनसंग्रह, माधव, वाराणसी, १९७८, पृ० १९७,

४. अबोधात्मस्त्वजीवः।—सर्वदर्शनसंग्रह, माधव, वाराणसी, १९७८, पृ० १४३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क) पुद्गल

जिसका संयोग व विभाजन हो सके, उसे पुद्गल कहते हैं।[1] वे स्पर्श, रस, गन्ध व वर्ण गुण वाले होते हैं। वे दो प्रकार के होते हैं—अणु (Atomic) और स्कन्ध (Compound)। अणु सबसे छोटा भाग है, जिसका विभाजन असम्भव है, जबकि स्कन्ध दो या उससे अधिक अणुओं से निर्मित होता है।

(ख) आकाश

आकाश तत्त्व प्रत्यक्षगम्य नहीं है, यह अनुमान द्वारा सिद्ध होता है। वह सभी अस्तिकाय—द्रव्यों—जीव, पुद्गल, धर्म व अधर्म को अवकाश प्रदान करता है। बिना आकाश के इन अस्तिकाय—द्रव्यों की स्थिति असम्भव है। क्योंकि द्रव्य आकाश को व्याप्त करता है और आकाश द्रव्य के द्वारा व्याप्त होता है।[2] जीव, धर्मादि तत्त्वों को आश्रय देने वाले आकाश को लोकाकाश कहते हैं। जहाँ उक्त द्रव्य हो, उसे अलोकाकाश कहते हैं। लोकाकाश में असंख्य प्रदेश होते हैं, जबकि अलोकाकाश में अनन्त।

(ग) काल

आकाश-तत्त्व की तरह काल भी प्रत्यक्षगम्य नहीं होने से, यह भी अनुमान पर ही आधारित है। द्रव्यों की वर्तना, परिणाम, क्रिया, नवीनत्व, या प्राचीनत्व काल के कारण ही सम्भव होती है।[3] द्रव्यों के अस्तित्व से ही काल की सत्ता सिद्ध होती है। इसकी विभिन्न अवस्थाएँ हैं। जैसे—घण्टा, मिनट, दिन व रात्रि आदि। काल भी अणु कहलाता है। यह प्रदेश को व्याप्त करता है, इसलिये इसका कोई कार्य नहीं है। ये अणु समस्त लोकाकाश में व्याप्त रहते हैं, ये परस्पर मिलते भी नहीं हैं। ये अदृश्य, अमूर्त, अक्रिय व असंख्य होते हैं।

(घ) धर्म

जैन-दर्शन में स्वीकृत धर्म की कल्पना नितान्त भिन्न है। यह स्वयं जीव को गति प्रदान करने में असमर्थ है,[4] किन्तु उसके लिए उचित वातावरण का निर्माण करता है। जिस प्रकार जल में तैरने वाली मछली के लिए जल सहायक होता है, उसी प्रकार धर्म भी जीव-पुद्गल द्रव्यों को गति में सहायक होता है।

(ङ) अधर्म

अधर्म का प्रमाण स्थिति है। वह द्रव्यों की स्थिति में सहायक होता है। जिस प्रकार थके पथिक के लिए वृक्षों की शान्त व सुखदायी छाया मदद करती है, उसी प्रकार अधर्म भी द्रव्यों की स्थिति में सहायक सिद्ध होता है। यहाँ छाया व स्थिति क्रमशः पथिक व द्रव्यों को बाध्य नहीं करती हैं, अपितु सहायता मात्र करती हैं।

यहाँ अधर्म की कल्पना धर्म के एकदम विरुद्ध मान्यता प्रस्तुत करती है।

७. मानव और उसके लौकिक-मूल्य

जैन-दर्शन में जहाँ पारलौकिक-तथ्यों का विशद विवेचन प्राप्त होता है, वहाँ इहलौकिक-तथ्यों का भी वैज्ञानिक विश्लेषण उपलब्ध होता है। इस दार्शनिक सम्प्रदाय का उद्भव ही मानव की इहलौकवादी चिन्तना से हुआ

---

१. पूरयन्ति गलन्ति च·····।—सर्वदर्शन संग्रह, माधव, वाराणसी, पृ० १५३.

२. षड्-दर्शनसमुच्चय, गुणरत्न की टीका—४९.

३. वर्त्तना-परिणाम-क्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य।
—तत्त्वार्थाधिगम सूत्र—५.२२.

४. धर्मादीनां गत्यादिविशेषाः।—सर्वदर्शनसंग्रह, माधव, वाराणसी, १९७८, पृ० १५४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इस दर्शन में मानवमात्र को कर्त्तव्यपरायणता का उपदेश दिया गया है। मानव का इहलौकिक विकास करना ही समाज व राष्ट्र के लिए हितकर है। यह प्रत्यक्ष-प्रमाण, जड़वाद, ज्ञान की महत्ता, रत्न-त्रय, सुदृढ़ आर्थिक-व्यवस्था, परमाणुवाद, पंच महाव्रत व सदाचार आदि मानवोपयोगी मान्यताओं का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

(क) प्रत्यक्ष-प्रमाण

मानव को बिना किसी सहायता से प्राप्त होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष है। इसके दो भेद हैं—मतिज्ञान व श्रुतज्ञान। दृश्य-वस्तु का सम्पूर्ण बोध ही मतिज्ञान है और आगमों के आप्त-वचनों से जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। मतिज्ञान का प्रत्यक्ष चार प्रकार से होता है—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

(ख) जड़वाद

जैनदर्शन में जड़वाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह भौतिकवादी चिन्तना का आधार स्तम्भ है। इसके पाँच भेद हैं—पुद्गल, आकाश, काल, धर्म व अधर्म।

(ग) ज्ञान की महत्ता

अज्ञान ही समस्त कषायों का कारण है, जिससे मन की बगिया में क्रोध, मान, माया व लोभ की दुर्गन्ध उमड़ती है। इस अज्ञान की दुर्गन्ध का नाश ज्ञान की खुशबू से ही सम्भव है। इस समस्या के निराकरण के लिए ही रत्न-त्रय की सृष्टि हुई।

(घ) रत्न-त्रय

मानव को अज्ञान से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होना चाहिए। जिससे वह दुःखों से मुक्त होकर अमोघ आनन्द का उपभोग कर सके। इसके लिए तीन रत्नों—सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान व सम्यक्-चारित्र की आवश्यकता प्रतीत हुई।

(ङ) पंच-महाव्रत

मानव की चारित्रिक शुद्धि के लिए पाँच महाव्रतों की आवश्यकता पर बल प्रदान किया गया है। वे निम्न हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह।

अहिंसा

अहिंसा जैन-दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है। इसका तात्पर्य है—मन, वचन, कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देना। अहिंसा मानव की आत्म-शक्ति का प्रमाण है जबकि हिंसा शारीरिक-शक्ति का।

सत्य

सत्य-वचन से मनुष्य को लोभ, भय व क्रोध का डर नहीं रहता है। अतः मानव को सत्य व हितकारी वचनों का प्रयोग करना चाहिए।

अस्तेय

धन मानव की बाह्य-सम्पदा है। अतः धन की चोरी जीवन की चोरी के समान है। इसलिए मनुष्य मात्र को किसी प्रकार का चौर्य-कर्म नहीं करना चाहिए। जैन-दर्शन के अस्तेयवाद के कारण ही स्वच्छ-पूँजीवाद को प्रबल प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

ब्रह्मचर्य

मानव को सभी प्रकार की वासनाओं का परित्याग करना चाहिए। अतः मानव को मन, वचन और कर्म से कामनाओं का त्याग करना चाहिए। यह सिद्धान्त स्वस्थ संयम का आदेश प्रदान करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपरिग्रह

मानव को सांसारिक-वस्तुओं का अधिक संग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि संग्रह-प्रवृत्ति से अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याएँ पैदा होती हैं। इस सिद्धान्त ने सुन्दर समाजवादी चिन्तन को व्यक्त किया है, जो आधुनिक समय में अति-महत्त्वपूर्ण है।

(च) मानव और परम सत्ता

ईश्वर कोई प्रत्यक्ष सत्ता नहीं है, अतः जैन-दर्शन में ईश्वर जैसी कल्पित सत्ता को अस्वीकार किया है। वे सिद्धस्थ तीर्थंकरों की आराधना पर बल प्रदान करते हैं, उसे ही परम सत्ता या ईश्वर स्वीकार करते हैं। अतः जैन-दर्शन में परम सत्ता के स्थान पर तीर्थंकरों की पूजा व उपासना पर बल देकर मानवीय गौरव को सहर्ष स्वीकार किया गया है। यह मानववादी अर्थवत्ता का सुन्दर व अद्वितीय प्रमाण है।

८. मानव और उसकी आचार-पद्धति

जैन-दर्शन के पूर्व तत्कालीन भारत में अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ अमानवता का नग्न-अट्टहास कर रही थीं। ऐसे भीषण-समय में मानव मूल्यों की सुरक्षा करने के लिए अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये थे, जैसे—वैदिक आदर्श व उनके कर्म, पुरोहितों के आडम्बरयुक्त कर्म, हिंसा, अन्याय, जातिवाद, छूआ-छूत, परलोकवाद, यज्ञों में बलि, साम्प्रदायिकता, धार्मिक-ढोंग, असत्य-भाषण, चोरी, संग्रह-वृत्ति, स्त्री व शूद्रों का शोषण, संस्कृत-भाषा का प्रचलन, राष्ट्रीयता का अभाव व मिथ्या अन्धविश्वास आदि अमानवीय-मूल्यों का विरोध। ये सभी कीटाणु मानव-मूल्यों को नष्ट करके समाज की जड़ को खोखला कर रहे थे। जैन आचार्यों ने इनके विरुद्ध कदम उठाया। भगवान् महावीर ने मानव को उपदेश दिया—"किसी भी प्राणी को सताओ मत। जीओ और जीने दो। दया करो।[1]" उन्होंने मानव-कल्याण के लिये अनेक उपदेश दिये, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—रत्न-त्रय, सप्त-पदार्थ, पंच-महाव्रत व कैवल्य की प्राप्ति आदि।

जैन-दर्शन में अज्ञान से मुक्ति के लिए तीन साधन बतलाये गये हैं, जिन पर चलकर मानव अज्ञान से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होकर आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। वे निम्न हैं—सम्यक्-दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्-चारित्र।

(क) सम्यक्-दर्शन

यथार्थ-ज्ञान के प्रति श्रद्धा सम्यक्-दर्शन कहलाती है। इसका तात्पर्य वास्तविक ज्ञान से है, न कि अन्ध-विश्वास से। जैन-दर्शन युक्ति-प्रधान दर्शन का समर्थक है, वह युक्ति-रहित किसी भी दार्शनिक मान्यता को स्वीकार नहीं करता है। यहाँ आचार्य हरिभद्र का कथन उद्धृत करना उचित ही होगा—"न मेरा महावीर के प्रति कोई पक्ष-पात है और न कपिल या अन्य दार्शनिकों के प्रति द्वेष ही है। मैं युक्ति-संगत वचन को ही स्वीकार करता हूँ, वह चाहे जिस किसी का हो।"

(ख) सम्यक्-ज्ञान

जीव व अजीव के मूल तत्त्वों का विशेष ज्ञान होने से ही सम्यक्-ज्ञान प्राप्त होता है। घाती कर्मों के पूर्ण विनाश के बाद ही केवल-ज्ञान की प्राप्ति संभव है।

(ग) सम्यक्-चारित्र

सम्यक्-चारित्र का तात्पर्य है, जीव हितकारी कर्मों में ही प्रवृत्त हो। जिससे वह कर्म-जाल से मुक्त हो सकता है, क्योंकि बन्धन व दुःख का कारण है—कर्म। सम्यक्-चारित्र ही इसके विनाश का आधार है।

---

१. दिनांक २९ मार्च, ८० को उदयपुर (राज०) से प्रस्तुत रेडियो वार्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः जैन-दर्शन के नैतिक-मूल्यों का आधार अहिंसा है। अहिंसा ही मानव की सुदृढ़ आधार-शिला है। भगवान् महावीर ने अहिंसक-समाज के लिए सबसे अधिक बल प्रदान किया है, जो प्राणी-मात्र के लिये उपयोगी है।[1] इस अहिंसा व अध्यात्मवादी चिन्तनाओं से अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। ये आचार-दर्शन की मान्यताएँ आधुनिक समाज के लिये पर्याप्त उपयोगी सिद्ध हो चुकी हैं।

□

१. नवभारत टाइम्स (दैनिक पत्र), नई दिल्ली, ३१-३-१९८० ।

× × × × × × × × ×
× ×
× ×
× ×
× ×
× ×

भिद्यतां सम्प्रदायास्तु न धर्मो भेदमावहेत्।
सद्म-हर्म्य-कुटीरेषु, किमाकाशं विभिद्यते ॥

—वर्द्धमान शिक्षा सप्तशती
(श्री चन्दनमुनि रचित)

सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, धर्म में भेद नहीं हो सकता।
क्या आकाश—घर, महल और झोंपड़े में भिन्न हो सकता है?

× ×
× ×
× ×
× ×
× ×
× × × × × × × × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org